लौहित्य साहित्य सेतु: सहयोगी विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित द्विभाषिक ई-पत्रिका
वर्ष: 3, संख्या: 4; जनवरी-जून, 2022

अदब की दुनिया में 'तन्हाइयों का रक्स'

✍ अंशु सारडा 'अन्वि'

यह अदब की दुनिया है, इस अदब की दुनिया में एक लंबी फेहरिस्त है शायरों, कवियों की। कुछ वाकई सरस्वती के सच्चे साधक होते हैं तो कुछ सोशल मीडिया और फेसबुक की उपज। ऐसे में उत्तर प्रदेश के शहर बरेली की सिया सचदेव अदब की दुनिया का वह नाम है जिनकी मादरे जबान उर्दू नहीं फिर भी उन्होंने उर्दू शायरी और मंचों पर अपनी एक मुकम्मल जगह बना ली है। आज के इस चालू और चलताऊ दौर में जहाँ हर रचना तुरंत कॉपी हो जाती है या शब्दों के जोड़-तोड़ के साथ नई रचना का लिबास ओढ़ कर आ जाती है ऐसे में मौलिक और सृजनात्मक लेखन लिखने वालों की कमी दिखाई देने लगती है। सिया गजल की दुनिया का वो हस्ताक्षर है जिनकी शायरी में दर्द संगीत बनकर फूट पड़ता है। उनको पढ़ने वालों को उनकी शायरी जग बीती नहीं बल्कि आपबीती जैसी लगती है क्योंकि सिया के अशआर में जिंदगी बातें किया करती है, उसमें वक्त की करवटों के अहसासात हैं तो एक बेकरार रूह से मुलाकात भी है, उनकी शायरी में विरह की तड़प है तो रिश्तों की कदर भी, खुद को छुड़ाने की जद्दोजहद है तो तन्हाइयों का रक्स भी। स्वभाव से संकोची, मृदुभाषी, मितभाषी सिया सचदेव का छठवां शेरी मजमुआ 'तन्हाइयों का रक्स' पढ़ने को मिला। इनकी शायरी में जिंदगी के ताल्लुकात बिखरे पड़े हैं। सिया जी से जब बात हुई तो उन्होंने बड़े ही झिझक के साथ अपनी बात शुरू की पर बाद में वह अपने बहते हुए ख्यालों को शब्दों की माला में पिरोने लगीं। अपनी पीड़ा को रचने की अपनी इच्छा को उन्होंने गहरा रचनात्मक अर्थ दिया है। अज्ञेय ने लिखा है कि दुःख मनुष्य को माजता है और यह उक्ति सिया

सचदेव पर पूरी तरह सटीक बैठती है। अपने जीवन में अनुभव की गई पीड़ा पर वे शेर कहती हैं और जो उस पीड़ा को समझ सकते हैं, वे हीं उसके साथ अपनी संवेदनाएं जोड़ सकते हैं। अहसास और पीड़ा की शायरी करने वाली सिया का कहना है कि अपनी शायरी में उन्होंने कभी भी बनावटी लफ़्ज़ों की बातें नहीं की बल्कि हमेशा अपने अनुभवों को ही लिखा है। जैसे-

'पर पीड़ा से नरम नहीं हो जिनके दिल,

उनसे दु:ख कहने का कड़वा अनुभव है।'

वे कहती हैं कि उन लोगों को अपना दु:ख कहना गलत होगा जिनके अंदर संवेदना ही न हो। किसी भी कविता, गजल, नज़्म या रचना में शब्दों तथा उसके अर्थों की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं होती है, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूबे हुए होते हैं। ऐसे में अलग-अलग आकार के कटे-छटे शब्द शिलाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता बल्कि वे भावों के सागर में संधि कर एकाकार हो जाते हैं और एक होकर एक बड़े सृजन में बदल जाते हैं। और उनको अगर सिया सचदेव जैसा संवेदनशील मन मिल जाए जो उन्हें अपने दर्द से, भावों से निर्जीव से सजीव कर दें तो वे अल्फ़ाज़ अल्फ़ाज़ न रहकर तमाम रसों में बदल जाते हैं और जुमले, ग़ज़ल, नज़्म, शेर का रूप धर लेते हैं।

'आप क्या जाने इंतेज़ार की शब

आंसुओं से दिए बुझाते हैं।

सिया और दु:खों का जैसे जन्म से ही नाता रहा। मात्र 7 साल की उम्र में माँ का साया सर पर से उठ गया और भाई- बहनों में बड़ी सिया जब सयानी हुई तब पिता भी चलते रहे। मात्र 15 -16 साल की उम्र में ही शादी के बाद वे अपनी घर गृहस्थी में रमी हीं थीं कि इकलौते छोटे भाई की मौत ने उन्हें झकझोर दिया। भाई की मौत के 2 साल बाद ही पति महेंद्र सिंह बांगा की मौत ने उन्हें बिल्कुल तोड़ दिया। वे कहती हैं कि वह हर रिश्ता जिससे एक औरत को सुरक्षा का भाव मिलता है वे सब एक-एक करके साथ छोड़ते चले गए। यही कारण है कि भावुकता और संवेदनशीलता की उनकी यह कमजोरी उनकी रचनाओं में उनकी ताकत बनकर उभरती हैं। और ये पीड़ाएं हीं

सिया को सिया बनाती हैं। वे कहती हैं कि यही मेरी सबसे बड़ी दौलत है जिससे मुझे ईश्वर ने नवाजा है। अगर ऊपर वाला उन्हें इतने दर्द या दुःख नहीं देता, न ही दिखाता तो वह आज ऐसी मुकम्मल शायरी भी न कर पातीं। ईश्वर ने उन्हें उस दर्द को सहने और कहने के लिए एक नेमत बनाकर भेजा है। माँ की मृत्यु से आहत सिया बचपन से ही अपने स्कूल की कॉपियों में माँ को शिकायती कविताएँ लिखने लग गई थीं और लिखते- लिखते शायरी करने लग गईं।

'जब मुझे मौत की जरूरत है

क्यूं दुआ दे रहा है जीने की'

उर्दू उनकी मादरे जबान नहीं है पर उनके दादा जी पाकिस्तान से विस्थापित होकर आए थे अतः उर्दू का अखबार, उपन्यास आदि उनके घर पर आते थे और अपने दादा जी से उन्होंने उसे पढ़ना सीखा। साइकिल के व्यापार से संबंधित होने के कारण वहाँ से एक डायरी आया करती थी जिसमें नीचे शेर लिखे होते थे। वे उत्सुकता से अपने दादाजी से उसका अर्थ पूछतीं और वहीं से ही साहित्य में उनकी रुचि पैदा हुई। शादी के बाद जैसा कि अमूमन प्रत्येक भारतीय महिलाओं के साथ हुआ करता है कि घर -गृहस्थी की जिम्मेदारियों का दौर शुरू हो जाता है। बीच के साल तो जितनी रफ्तार से उनकी जिंदगी में आए, उससे कहीं अधिक रफ्तार से भी चले भी गए। सन 2008 में फिर से कागज़-कलम का उन्होंने दामन थामा और एक उस्ताद से उर्दू सीखना शुरू किया। 40 वर्ष की उम्र में पहली बार किसी मंच पर उन्होंने अपनी शायरी पढ़ी। वे कहती हैं कि यही है उनकी आपबीती से जगबीती का सफर।

'किस को किस से यहां मुहब्बत है

ये तमाशे हैं सब दिखाने के।'

वे कहती हैं कि उनकी शायरी की तीन-चार किताबें आ चुकी थी पर मंच का अनुभव नहीं था उन्हें। आजकल हम देखते हैं कोई भी रचनाकार हो वह अपनी 5-6 रचनाओं के दम पर ही मंचीय कवि बन जाते हैं और उसी के सहारे खुद को स्वत: ही कवि घोषित कर लेते हैं। रही -सही कसर सोशल मीडिया पर चलते कुकुरमुत्तों की भांति उगी संस्थाओं ने पूरी कर दी है। पहले ही मंचीय कार्यक्रम में उन्हें बड़े-बड़े नामों के साथ शिरकत करने का मौका

मिला और उनको उत्साहवर्धन भी बहुत मिला। वे कहती हैं कि जिंदगी में प्रत्येक को अपनी राह खुद ही बनानी पड़ती है, अगर आपके अंदर सहालियत है कुछ कर गुजरने की तो आप अपनी छाप जरूर छोड़ जाएंगे। मुझे मेरी शायरी ने ही यह पहचान दी है। सोशल मीडिया, फेसबुक और उनकी किताबों के जरिए लोग उन्हें पढ़ते हैं और जानते हैं। हमारे समाज की रूढ़िवादिता कहें या न बदली जा सकने वाली मानसिकता कि हम इस फैशन के दौर में बहुत आगे चलना चाहते हैं पर लेखन के लिए हम बहुत पिछड़ी सोच लेकर चलते हैं। अगर कोई महिला पीड़ा लिखती है, दर्द को लिखती है तो उसके बारे में एक दुखियारी, सताई हुई औरत का टैग लग जाता है कि शायद इसे अपने घर में प्रताड़ित किया जाता है। सिया अब हर तरह की शायरी लिख रहीं है। वे बताती हैं कि उनका नाम गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार रखा गया था पर उन्होंने लोग उन्हें न पहचाने इसलिए सिया सचदेव के नाम से लिखना शुरू किया। पर इसी नाम से उन्हें इतनी पहचान मिल जाएगी कि उनका मूल नाम गौण हो जाएगा इस बात का तो उन्हें इल्म भी नहीं था।कहते हैं न कि ईश्वर जिसे अपने कर्म से नवाजता है, उसे कौन छुपा सकता है।

उनका एक शेर फेसबुक पर बहुत प्रसिद्ध हुआ। वह था-

'बन कर दुल्हन जो पहन कर आई थी तेरे घर
उस सुर्ख पहरन में ही करना मुझे विदाआ।'

सरदार जियाजी जैसे बड़े -बड़े शायरों ने उनकी तारीफ की कि एक हिंदुस्तानी औरत ही ऐसा शेर कह सकती है। यह वह समय था जब अधिकांशतः पुरुष ही शायरी या ग़ज़ल कहा करते थे, महिलाओं की संख्या नगण्य थी। अब तो युवा भी अच्छी वस्ल कह रहे हैं। वे कहती हैं कि अब उर्दू मुस्लिमों तक ही सीमित नहीं। अब हिंदी भाषी उर्दू में और उर्दू वाले हिंदी और अवधी दोनों में कह रहे हैं और लिख रहे हैं। सिया जी कहती हैं एक औरत घर की चारदीवारी से बाहर निकलती है तो लोगों की चुप पर भेदती निगाहें उनको बहुत कुछ कह जाती हैं।

'दाग लग जाए अगर कोई पेशानी पर
आइना भी नहीं करता है गवारा चेहरा'

उन्हें लोगों से मिलना पसंद है या नहीं, सवाल के जवाब में वे कहती हैं कि जब कोई मुझसे मिलने आता है तो मुझे लगता है कि मैं एक अदीब हूं जिसे ईश्वर ने इतनी पहचान दी है कि कोई मुझसे मिलने आए। लेकिन पति की मृत्यु के बाद अब उन्होंने खुद को समेट लिया है। देश-विदेशों में उन्होंने कई कार्यक्रम किए हैं और बहुत दाद भी पाई है। वे कहती हैं कि उनकी शायरी उनकी अपनी नहीं बल्कि उन पीड़ाओं की देन है जो कि लोगों ने उनको पहुँचाई है। उस पीड़ा से, एक संवेदनशील मन से जो आह निकलती है वही कविता में निकलती है। लोग कहते हैं कि लिखने के लिए दिमाग को शांत रखना चाहिए पर वे मानती हैं कि लिखने के लिए एक शांत दिमाग की नहीं बल्कि अशांत दिमाग की जरूरत होती है। जब तक हम विचलित नहीं होंगे, जब तक हमें दुनिया की ठेस नहीं लगेगी जो कि हमें झिंझोड़ दे तब तक हम कुछ नहीं लिख सकते हैं। वे कहती हैं-

'ऐसे दीवानों से कब खाली रही है दुनिया
जो हकीकत में बदल देते हैं अफसानों को।'

अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित और भारत और पाकिस्तान सहित विदेशों में शायरी की दुनिया में समान रूप से लोकप्रिय सिया सचदेव ने अपने हर शेर को मन की गहराइयों और शिद्दत से लिखा है।

'चल 'सिया' अब यहां से कूच करें
तेरा अपना नहीं रहा कोई'

संपर्क-सूत्र:
स्तंभकार, दैनिक पूर्वोदय
गुवाहाटी